अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का राष्ट्रीय आय के वितरण पर प्रभाव

Ishwar Singh
Lecturer,
Education Department of Haryana.

सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–विभाजन के कारण उत्पादकता में हुई सामान्य वृद्धि से श्रमिकों को लाभ होता है और राष्ट्रीय आय के कार्यात्मक वितरण से उसे कोई गंभीर हानि पहुँचने की कोई संभावना नहीं है। यही कारण है कि श्रमिक संघ भी स्वतंत्र व्यापार का समर्थन करते हैं। किन्तु अल्पकाल में श्रमिकों के विशिष्ट एवं गतिहीन समूह (विशिष्ट भौतिक साधनों के स्वामियों की भाँति) जब किसी कारण से विदेशी प्रतियोगिता में वृद्धि हो जाती है तो आय में अत्यधिक हानि सहन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। वे इस कारण और भी दयनीय हो जाते हैं कि अन्य कीमतों की अपेक्षा मजदूरियाँ कम लोचदार होती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का राष्ट्रीय आय के वैयक्तिक एवं कार्यात्मक वितरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन के विभिन्न साधनों की सापेक्षित कीमतों में परिवर्तन हो जाता है। प्रतिष्ठित एवं नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त में इस महत्त्वपूर्ण धारणा पर निम्न दो शीर्षकों के अधीन विचार किया गया है – लगान, मजदूरी व ब्याज (या लाभ) पर प्रभाव एवं श्रमिकों के अप्रतियोगी समूहों की आय पर प्रभाव। प्रस्तुत शोध–पत्र में यही जानने प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : कार्यात्मक, कृषक, औद्योगिक आय, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन,

शोध–प्रविधि

प्रस्तुत शोध–पत्र में ऐतिहासिक विश्लोषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है और यह शोध–पत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। इसके लिए प्रमुख पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं तथा समाचार–पत्रों से तथ्य लिए गए हैं। तथ्यों को निष्कर्ष तक पहुंचाने के लिए शोधकर्ता ने स्वयं के अनुभव से शोध को गति दी है।

लगान, मजदूरी व ब्याज (या लाभ) पर प्रभाव

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों का सदैव यह विचार रहा है कि विदेशी व्यापार एक ओर कृषक देशों और दूसरी ओर औद्योगिक देशों के बीच होने वाला व्यापार है। अतः उनकी आय के कार्यात्मक वितरण पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रभाव से आशय यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किस प्रकार लगान, मजदूरी और ब्याज (अथवा लाभ) पर प्रभाव डालता है।

लगान

जब व्यापार एक कृषक देश और एक औद्योगिक देश के बीच शुरू होता है तो कृषक देश से कृषि वस्तुएं औद्योगिक देश को निर्यात की जाएंगी। निर्यात करने वाले खेतिहर देश में कृषि वस्तुओं की माँग बढ़ने से लगान में वृद्धि होने लगती है, क्योंकि अब सीमांत भूमि पर खेती की जाने लगती है। इसके विपरीत

औद्योगिक देश द्वारा कृषि वस्तुओं का आयात किए जाने से वहाँ भूमि की दुर्लभता पहले से कम हो जाती है। इसलिए भूस्वामियों की आय कम हो जाती है।

मजदूरी

औद्योगिक देश द्वारा कृषि वस्तुओं का आयात किए जाने के कारण वहाँ खाद्यान्न सस्ते हो जाते हैं। कीमत घटने के कारण औद्योगिक देश में वास्तविक मजदूरी में वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर कृषक देश में कृषि वस्तुओं के निर्यात के कारण खाद्यान्न महंगे हो जाते हैं, जिससे श्रमिकों एवं अन्य व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, अर्थात् कीमत बढ़ने के कारण उनकी वास्तविक मजदूरियां कम हो जाती हैं।

ब्याज

यदि किसी देश के निर्यात उसके आयातों का भुगतान कर देते हैं, अर्थात् विदेशी व्यापार में साम्य की अवस्था है तो स्वर्ण का आवागमन की समस्या नहीं उठेगी। सामान्यतः दीर्घकाल में तो साम्यावस्था ही पायी जाती है, परन्तु अल्पकाल में साधारणतया असामान्यता ही देखने को मिलती है। ऐसी स्थिति में यदि देश का निर्यात इसके विपरीत देश का आयात उसके निर्यात से अधिक है तो अर्थव्यवस्था में स्वर्ण में आगमन होगा जिससे मुद्रा की पूर्ति बढ़ेगी और ब्याज–दर घट जाएगी। इसके विपरीत यदि देश का आयात उसके निर्यात से अधिक है तो स्वर्ण अर्थव्यवस्था से बाहर जाएगा, जिससे मुद्रा की पूर्ति घट जाएगी और इसलिए ब्याज दर बढ़ जाएगी।

लाभ

जहाँ तक लाभ का प्रश्न है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण कृषक और औद्योगिक देश में लाभ बढ़ते हैं, क्योंकि विशिष्टीकरण के कारण लागतें कम हो जाती हैं, और बढ़े हुए बाजार ऊँचे मूल्य दर्शाते हें।

मजदूरी वाले देशों में अर्न्राष्ट्रीय व्यापार के प्रभाव

कभी–कभी ऐसा कहा जाता है कि एक ऊँची मजदूरी वाला देश जैसे अमेरिका, एक कम मजदूरी वाले देश भारत से व्यापार करता है तो अन्तर्राष्ट्रीय–व्यापार मजदूरी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह तर्क उचित नहीं है। प्रो. टॉजिग ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है, "संभवतः सबसे अधिक परिचित और सबसे अधिक निराधार विश्वास यह है कि व्यापार में पूर्ण स्वतंत्रता होती है। मजदूरी की समस्या यथार्थ में उत्पादकता की समस्या है। उद्योग की उत्पादकता जितनी ही अधिक होगी मजदूरियों का सामान्य स्तर भी उतना ही ऊँचा होगा।

प्रतिष्ठित दृष्टिकोण के दोष

विदेशी व्यापार के सम्पत्ति के वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने के उपरोक्त प्रतिष्ठित ढंग में दो उल्लेखनीय दोष हैं –

(अ) यह स्थिर आय और स्थिर दायित्व वाले व्यक्तियों की उपेक्षा करता है।

(ब) यह मान्यता भी अवास्तविक है कि कुछ देश पूर्णतः प्राथमिक वस्तुओं का आयात करते हैं और कछ देश पूर्णतः निर्मित वस्तुओं का आयात करते हैं।

प्रो. हैबरलर के मत में उक्त विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अपर्याप्त और यथार्थता से दूर है, क्योंकि वह उत्पत्ति के तीन साधनों अर्थात् भूमि, श्रम व पूंजी को ही ध्यान में रखता है और आय का वितरण भी इन्हीं तीन साधनों के बीच करता है।

अप्रतियोगी समूहों का सिद्धान्त

श्रमिकों की अप्रतियोगी समूहों अथावा अधिक संक्षिप्त में बंद समूहों का सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि श्रम के अनेक प्रकार होते हैं। एक बंद समूह के श्रमिक दूसरे बंद समूह में किन्हीं बाधाओं के कारण आ जा नहीं सकते, किन्तु एक समूह के भीतर स्वतंत्र प्रतियोगिता होती है और इससे मजदूरी की दर समान रहेने की प्रवृत्ति पायी जाती है। चूंकि श्रम के अनेक प्रकार होते हैं अर्थात् यह समरूपी साधन नहीं है इसलिए हमारी यह मान्यता है कि सभी श्रमिकों के लिए मजदूरी समान होती है, समाप्त हो जाती है।

अतिप्रयोगी समूहों के विद्यमान होने का मूल्य–यंत्र पर जो प्रभाव डालता है उसका विभिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से विवेचन किया है –

केयरनेस ने जो इस धारण के जन्मादाता हैं, विभिन्न बंद समूहों की संख्या एवं स्वभाव को निश्चित माना है। वे कहते हैं क अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त, जो विभिन्न देशों के बीच साधनों को गतिहीन मान लेता है, के अन्तर्गत प्रत्येक देश की समरूपी श्रम–पूर्ति वास्तव में विभिन्न अप्रतियोगी समूह ही हैं। उनका निष्कर्ष है कि यदि किसी देश विशेष के अन्दर अप्रतियोगी समूह विद्यमान है तो उनके बीच आर्थिक संबंधों को अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य सिद्धान्त लागू करके समझाया जा सकता है। एक ही देश के भीतर इन समूहों की, एक–दूसरे की वसतुओं के लिए पारस्परिक माँग ही प्रत्येक समूहों में मजदूरियों के स्तर का निर्धारण करेगी।

टॉजिग का विश्लेष्ण केयरेनेस की अपेक्षा अधिक गंभीर है। उनका कहना है कि इन समूहों की संख्या व स्वभाव को हमेशा के लिए निश्चित एंव दिया हुआ मान लेना उचित नहीं है। उनका मत है कि कम–से–कम दीर्घकाल में एक विशेष श्रम की माँग को, जो इसके उत्पादों के लिए माँग से उत्पन्न होती है, उस विशेष समूह में मजदूरी के स्तर का निर्धारण करने वाली एकमात्र शक्ति नहीं मान लेना चाहिए। कारण यह है कि श्रम की पूर्ति संबंधी दशाओं को भी विचार में लेना आवश्यक होता है। वास्तव में यह भी संभव है कि विभिन्न समूहों में मजदूरी के सापेक्षिक स्तर पर माँग का कोई असर न पड़े।

मार्शल ने इसी बात को समझाने के लिए यह उदाहरण प्रस्तुत किया है – मान लीजिए समाज श्रमिकों की अनेक समतल श्रेणियों में विभाजित है और प्रत्येक श्रेणी में उसी श्रेणी सदस्यों के बच्चों को प्रवेश दिया जाता है तथा प्रत्येक श्रेणी के रहन–सहन व आराम का अपना ही विशेष स्तर है। जब इन

समूहों को प्राप्त करने वाली आय में वृद्धि होती है और जब आय कम हो जाती है तो इसकी संख्या में भी तेजी से कमी हो जाती है। यह भी मान लीजिए कि माता–पिता अपने बालक को अपनी ही श्रेणी के किसी व्यवहार के लिए तैयार कर सकते हैं, परन्तु वे उन्हें इस श्रेणी से ऊपर या नीचे के व्यवसाय अपनाने की कभी भी अनुमति नहीं देंगे।

इन मान्यताओं के अधीन किसी भी व्यापार में सामान्य मजदूरी वह होगी जो कि नियमित रूप से रोजगार में रहे श्रमिक को अपने और अपने सामान्य आकार वाले परिवार के लिए अपनी श्रेणी के अनुसार भरण–पोषण के समुचित अवसर दे। वह मजदूरी माँग पर निर्भर नहीं होती है। माँग से तो इतना ही संबंध है कि यहद उस श्रेणी के श्रम के लिए माँग न हो तो इससे संबुंधित व्यापार विद्यमान नहीं रक सकेगा। दूसरे शब्दों में सामान्य मजदूरी श्रम–उत्पादन के व्यय का प्रतिनिधित्व करती है।

विशुद्ध आर्थिक भाषा में इन समाजशास्त्रीय मान्यताओं का अर्थ यह है कि विभिन्न प्रकार के श्रमों की पूर्ति स्थिर लागत पर की जाती है। अतः श्रमिकों को पूर्ति–वक्र समतल होता है। जब ऐसा होता है तेा फिर माँ के परिवर्तन दीर्घकाल में इनकी कीमतों पर कोई प्रभाव नहीं डालेंगे, केवल पूर्ति की मात्रा को ही विभाजित करेंगे। इस प्रकार हमारे समक्ष दो परस्पर विरोधी धारणाएँ हैं– एक ओर केयरनेस तो यह मानते है कि इन बंद समूहों के भीतर श्रम की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार होती है। जबकि मार्शल उसे पूर्ण लोचदार मानते हैं।

केयरनेस के दृष्टिकोण में 'बंद समूह' की समस्या – मान लीजिए, किसी देश में केयरनेस की कल्पना का 'बंद समूह' विद्यमान है। यह भी मान लीजिए कि विदेशों में कोई ऐसा परिवर्तन होता है, जिसके कारा अब देश को इस समूह की उत्पत्ति में पहले की अपेक्षा अधिक तुलनात्मक हानि होती है और इसलिए उसे अब आयातित वस्तुओं से अधिक कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप इस समूह के सदस्यों की मजदूरी भी कम हो जायेगी। उदाहरण के लिए जिस प्रकार के यूरोपीय कृषि से विदेशों से अनाज के बढ़े हुए आयात के दबाव के कारण कृषि मजदूरों की मजदूरियाँ घट गई थीं। उसी प्रकार उपर्युक्त उदाहरण वाले देश में 'बंद समूह' के सदस्यों की मजदूरियों में भी गिरावट आ जाती है। परन्तु यदि मजदूरियाँ तेजी से गिरती हैं तो धीरे–धीरे मजदूर इस समूह को छोड़ देंगे और नये श्रमिक भी प्रवेश नहीं करेंगे। इस प्रकार केयरनेस बंद समूह का एक अल्पकालीन उदाहरण है जबकि मार्शल का दीर्घकालीन।

टॉजिग और मार्शल के बंद समूह की समस्या – इससे विपरीत यदि देश के उन बंद समूहों के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त हैं और इन वस्तुओं का निर्यात किया जाता है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण इस देश में इस समूह के श्रमिकों की मजदूरी बढ जाएगी। यह भी बिल्कुल संभव है कि इस समूह के श्रमिक संघ नये श्रमिकों के प्रवेश से बहुत ऊँची हो। लेकिन यदि यह माना जाये कि लोचदार पूर्ति की कल्पना अधिक वास्तविक परिस्थितियों के निकट है, तो दीर्घकाल में विभिन्न समूहों की सापेक्षिक मजदूरियों पर अन्तर्राष्ट्रीय–व्यापार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रो. टॉजिग भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।

टॉजिग लिखते हैं, "किसी भी देश में सामाजिक एवं औद्योगिक विभाजन की रेखा का निर्धारण मुख्य रूप से उस देश के अन्तर्गत विद्यमान परिस्थितियों, जैसे विभिन्न समूहों के सदस्यों की संख्या और उनकी एक–दूसरे की सेवाओं की माँग और कुछ अंशों में उनके विभिन्न जीवन–स्तर द्वारा होता है। विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं की माँग में वृद्धि के कारण घरेलू साधनों के द्वारा प्रभावित श्रमिकों की सापेक्षिक मजदूरी की दर में परिवर्तन शायद ही हो। आन्तरिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने वाला सामाजिक वर्गीकरण स्थापित हो जाता है, इसकी जड़ें गहरी होती हैं और यह संभव नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय–व्यापार का उन पर इतना अधिक प्रभाव हो कि कोई विशेष श्रेणी पहले से अधिक भिन्न दिखने लगे।"

टॉजिग की व्याख्या बुद्धिमत्तापूर्ण होते हुए यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में अप्रतियोगी समूहों की समस्या सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण और व्यवस्थित नहीं है। अतः हैबरलर ने उसे अपने साम्य सिद्धान्त द्वारा अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। प्रो. हैबरलर का मत है कि यदि श्रम के मूल्य सिद्धान्त की मान्यताओं को सामान्य सिद्धान्त के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाये तो टॉजिग के विश्लेषण से भी अधिक पूर्ण विश्लेषण देना संभव हो सकेगा।

बंद समूहों की आय पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव

केयरनेस का दृष्टिकोण	टॉजिग व मार्शल का दृष्टिकोण
बंद समूह एक अल्पकालीन उदाहरण	बंद समूह एक दीर्घकालीन उदाहरण
श्रम की पूर्ति बेलोचदार	श्रम की पूर्ति लोचदार
पूर्ति वक्र लंब के रूप में	पूर्ति वक्र समतल रूप में
मजदूरियों के स्तर पर निर्धारण प्रत्येक समूह के पारस्परिक माँग द्वारा	माँ की मजदूरियों के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं, प्रभाव पड़ेगा श्रम की पूर्ति पर
अल्पकाल में अन्तर्राष्ट्रीय–व्यापार से मजदूरियाँ घट–बढ़ सकती हैं।	दीर्घकाल में मजदूरियों पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर कोई प्रभाव नहीं।

हैबरलर द्वारा समस्या का व्यवस्थित विश्लेषण

प्रो. हैबरलर का कथन है, "श्रमिकों के बंद समूह वास्तव में विशिष्ट साधनों की एक विषम दशा मात्र हैं, जो तकनीकी अथवा अन्य कारणों से कुछ धंधों तक ही सीमित हो गए हैं।"

श्रम और उत्पत्ति के भौतिक साधनों में भेद

हैबरलर ने उत्पत्ति के भौतिक साधनों और श्रम में भेद किया है। दीर्घकाल में उत्पादन के भौतिक साधन जो बहुत ही विशिष्ट होते हैं, प्रमुखतः कृषि में ही पाये जाते हैं। ऐसे भौतिक साधनों में हम विभिन्न प्रकार के भूमियों और सभी प्रकार के प्राकृतिक साधनों को सम्मिलित करते हैं। यद्यपि सभी प्रकार के प्राकृतिक उपहार विशिष्ट नहीं होते। अन्त क्षेत्रों में जैसे कि निर्माण, वाणित्य एवं यातायात में अत्यधिक विशिष्ट भौतिक साधन दीर्घकाल में केवल एक अल्प भूमिका रखते हैं। यदि हम संकुचित दृष्टि से सोचें तो अल्पकाल में उनका बहुत महत्त्व होता है, क्योंकि भवनों, मशीनों एवं उपकरणों, यातायात के साधनों आदि के अधिकाश भाग जो एक विशेष समय पर विद्यमान होते हैं, विशिष्ट ही होते हैं। अतः विदेशी प्रतियोगिता की तीव्रता में वृद्धि होने से प्रशुल्कों में कम या वृद्धि होने अथवा अन्य कोई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबघों में परिवर्तन होने संबंधित उत्पत्ति के साधनों के स्वामियों को विशाल लाभ या हानियाँ हो सकती हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दीर्घकाल में सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से भय का कोई कारण नहीं है, क्योंकि दीर्घकाल में सब साधनों में श्रम सबसे कम विशिष्ट होता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–विभाजन के कारण उत्पादकता में हुई सामान्य वृद्धि से श्रमिकों को लाभ होता है और राष्ट्रीय आय के कार्यात्मक वितरण से उसे कोई गंभीर हानि पहुँचने की कोई संभावना नहीं है। यही कारण है कि श्रमिक संघ भी स्वतंत्र व्यापार का समर्थन करते हैं। किन्तु अल्पकाल में श्रमिकों के विशिष्ट एवं गतिहीन समूह (विशिष्ट भौतिक साधनों के स्वामियों की भाँति) जब किसी कारण से विदेशी प्रतियोगिता में वृद्धि हो जाती है तो आय में अत्यधिक हानि सहन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। वे इस कारण और भी दयनीय हो जाते हैं कि अन्य कीमतों की अपेक्षा मजदूरियाँ कम लोचदार होती हैं। उपयोगी होने पर भी एक भौतिक साधन का मूल्य शून्य तक गिर सकता है। किन्तु श्रमिक, जिन्हें सरकार के हस्तक्षेप और शक्तिशाली श्रम संघों का सहारा प्रापत है, मजदूरियाँ एक सीमा से अधिक गिरने की दिशा में अपना श्रम नहीं बेचेंगे। परिणाम यह होगा कि बदली हुई परिस्थितियों से प्रभावित उद्योगों में भीषण बेरोजगारी फैल सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. Bastable, Theory of International Trade

2. Chairmess, Some Leading Principles of Political Economy

3. Haberler, The Theory of International Trade, P. 190

4. Marshall, Principles of Economics, P. 557-58

5. Bastable, Theory of International Trade

6. Cairmess, Some Leading Principles of Political Economy

7. Haberler, The Theory of International Trade, P. 190

8. Marshall, Principles of Economics, P. 557-58